मगसर कृष्ण -१३, बुधवार, दिनाङ्क २७-१२-१९७८
वचनामृत- ४१२ से ४१३ प्रवचन-१७१

मरण तो आना ही है, जब सब कुछ छूट जाएगा। बाहर की एक वस्तु छोड़ने में तुझे दुःख होता है, तो बाहर के समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव एकसाथ छूटने पर तुझे कितना दुःख होगा? मरण की वेदना भी कितनी होगी? 'कोई मुझे बचाओ' ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा। परन्तु क्या कोई तुझे बचा सकेगा? तू भले ही धन के ढेर लगा दे, वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें, आसपास खड़े हुए अनेक सगे-सम्बन्धियों की ओर तू भले ही दीनता से टुकुर-टुकुर देखता रहे, तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है? यदि तून शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की प्रतीति-अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी, आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी। इसलिए अभी से वह प्रयत्न कर। 'सिर पर मौत मंडरा रहा है' ऐसा बारम्बार स्मरण में लाकर भी तू पुरुषार्थ चला कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है॥४१२॥

४१२ वचनामृत। **मरण तो आना ही है...** सब छूटनेवाला है। आहाहा! **बाहर की एक वस्तु छोड़ने में तुझे दुःख होता है, तो बाहर के समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव...** बाहर के सब द्रव्य, सब क्षेत्र, सब काल की दशाएँ आदि पर की, सबके भाव एकसाथ छूटने पर **तुझे कितना दुःख होगा?** शरीर मेरा है, जो मानना इसे कठिन पड़ता है मेरा नहीं ऐसा। मेरा मानना इसे ठीक पड़ता है। आहाहा! ऐसे शरीर के सम्बन्धी, वे मेरे सम्बन्धी हैं। आहाहा! छूटने के समय एक चीज़ छूटने पर दुःख होता है तो सब छूटने पर तुझे कितना दुःख होगा? आहाहा! भाषा है चार? **समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव तुझे कितना दुःख होगा?**

मरण की वेदना भी कितनी होगी ? पर के साथ जहाँ एकत्वबुद्धि है... आहाहा! एक जगह ऐसा कहा था न कि तुझे स्थिरता से भले सब न छूटे तो श्रद्धा से तो छोड़। आहाहा! मेरा कोई नहीं है, राग का कण भी मेरा नहीं है। मैं चैतन्य ज्ञानानन्द ज्ञायकस्वरूप हूँ। इसके अतिरिक्त राग का कण या रजकण मेरा नहीं है, मुझमें नहीं है, उनमें मैं नहीं हूँ। यह तो छोड़, ऐसा कहते हैं। स्थिरता होकर अस्थिरता छूटे वह और अलग है परन्तु श्रद्धा में यह आत्मा आनन्द है, ज्ञानस्वरूप है और इसके अतिरिक्त राग का कण और रजकण भी पर है, ऐसा श्रद्धा से तो छोड़। नहीं तो तुझे दुःख होगा। आहाहा! श्रद्धा में से वह पर है, ऐसा नहीं छूटेगा तो छूटने के काल में... आहाहा! तेरी नजरें वहाँ ही रहेगी। तुझे दुःख की पीड़ा होगी, एकत्वबुद्धि की (पीड़ा होगी)। आहाहा!

मरण की वेदना भी कितनी होगी ? 'कोई मुझे बचाओ' ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा। कौन बचावे ? आहाहा! **ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा।** उनसे छूटना तुझे नहीं रुचेगा क्योंकि एकत्वबुद्धि है इसलिए; और छूटने के सब भनकार बजेंगे, डॉक्टर भी ऐसा कहते हैं कि अब रह नहीं सकेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : डॉक्टर कहते हैं कि आठ दिन चले, इतना खून है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब थोड़ा चलेगा, यह तो ऐसा है और सब बातें करे। आहाहा!

हृदय पुकारता होगा। परन्तु क्या कोई तुझे बचा सकेगा ? आहाहा! वहाँ से यह उठते थे न जब पालेज से, लड़के हैं न सब वहाँ नटु। नाना ने एक गायन बनाया था उसने। मुझे कोई बचाओ रे, यह ऐसा कि यह समवसरण बिखरता है, यह चले जाएँगे, ऐसा। बहुत करुणाजनक भाषा बोली थी। छोटा है नटु।

यहाँ तो मुझे कोई बचाओ अर्थात् यह देह छूटती है, इसमें से कोई बचाओ। आहाहा! तब देखो न अमोलकभाई का राजकोट में (संवत्) १९९९ में पूरा कुटुम्ब इकट्ठा हुआ था। नानालालभाई, बेचरभाई, मोहनभाई पूरा कमरा भर गया था और स्वयं नयी विवाहित... अन्तिम स्थिति, निमोनिया हुआ। आहाहा! दोनों आँखों में से आँसू बहते जाएँ। सब कुटुम्ब इकट्ठा हुआ था, नानालालभाई, बेचरभाई। आहाहा! क्या हो ? आहाहा! छूटने के प्रसंग में कौन बचावे ? इसमें उसे कौन रखे ? आहाहा!

तू भले ही धन के ढेर लगा दे, वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें,... यह तो डॉक्टर आये। वैद्य और डॉक्टर दोनों आये हैं। आहाहा! **वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें,...** आहाहा! यह पीलिया में मर गये न? यह दो व्यक्ति। बाबूभाई की पुत्री के ननदोई। माणिकचन्द गाँधी है। उनके लड़के की लड़की है न बाबूभाई की। एक ही पुत्री है। पैसेवाले हैं। अब उनकी लड़की वापस उन्हें एक ही है। उसके दामाद को पीलिया हुआ, चार दिन और पाँच दिन हुए, वहाँ उड़ गया। दस हजार रुपये खर्च किये। लड़का गया, पैसा गया। आहाहा! अड़तीस वर्ष की उम्र। देह छोड़कर चला गया। दूसरे एक हरिभाई मोटे हैं, वीछिया के हैं। उनका छोटा भाई, उसे पीलिया हुआ। उसमें पाँच-सात हजार खर्च किये। छोटी उम्र पैंतीस वर्ष की है। देह छूट गयी। कौन रखे? पैसा खर्च करने से रहते होंगे? आहाहा!

आसपास खड़े हुए अनेक सगे-सम्बन्धियों... आसपास खड़े हुए, आहाहा! **सगे-सम्बन्धियों की ओर तू भले ही दीनता से टुकुर-टुकुर देखता रहे,...** ऐसा देखता रहे। वहाँ कौन रखे? आहाहा! **तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है? यदि तूने...** आहाहा! शरणभूत किया होगा तो यह है। **यदि तूने शाश्वत...** यह आत्मा शाश्वत् नित्य प्रभु, **स्वयंरक्षित...** स्वयं से रक्षित। उसे कोई रखे तो रहे, ऐसा नहीं है। आहाहा! **यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित...** अपने से ही रक्षित चीज़ है, उसे कोई रखे तो रहे, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! **ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की...** क्या वह स्वयंरक्षित चीज़? कहते हैं। ज्ञानानन्दस्वरूप, ज्ञान और आनन्दस्वरूप स्वयंरक्षित प्रभु ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। दो वस्तु मुख्य ली है। ऐसे आत्मा की प्रतीति (कि) मैं ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ—ऐसी प्रतीति अर्थात् **अनुभूति करके...** ऐसे उसे विशेष स्पष्ट किया। आहाहा! ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा है, उसकी अनुभूति-उसे अनुसरण कर अनुभव किया होगा तो वहाँ शरण होगी। आहाहा! यहाँ तूने बहुत दया पालन की होगी, व्रत किये होंगे, भक्ति की होगी, भगवान का स्मरण किया होगा... तो यह तो शुभभाव है। इसका तो पुण्य बन्धन होगा, यह तो बन्धन परमाणु का है। यह वहाँ कोई तुझे रखनेवाला रख सके, ऐसा नहीं है। आहाहा! परन्तु ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की अर्थात् यह शुभभाव किया होगा तो शरण देगा, यह नहीं है। बहुत शुभभाव किया होगा तो, वह भी अभी तो विलय हो गया। उसके परमाणु बँधे। आहाहा! परन्तु

वर्तमान में ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा। स्व ज्ञानानन्दस्वरूप, स्व.. रूप। ज्ञान और आनन्द जिसका स्वरूप है, उसकी प्रतीति अर्थात् अनुभूति। प्रतीति श्रद्धा के अर्थ में जाती है, अनुभूति वेदन के अर्थ में जाती है। आहाहा! ऐसी अनुभूति करके **आत्म-आराधना की होगी,...** वह आराधना अर्थात् यह। आहाहा! ज्ञानानन्दस्वरूपी प्रभु की प्रतीति, उसका विश्वास और अनुभव। आहाहा! यदि किया होगा। आत्म-आराधना की होगी, वह आत्म-आराधना। ज्ञानानन्द स्वरूप आत्मा हूँ, ऐसी प्रतीति और अनुभव, वह आत्म-आराधना। आहाहा! कोई व्यवहार किया होगा, इसलिए अन्दर शरण आयेगी, (ऐसा नहीं कहा)। यह दो लाईनें हैं। आधी यह और आधी नीचे डाली है।

यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित... यह आधी लाईन अन्तिम। पूरी अब **ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की प्रतीति...** आहाहा! ज्ञान और आनन्दस्वरूप, ऐसा भगवान आत्मा, उसके स्वसन्मुख होकर प्रतीति, पर से विमुख होकर अनुभूति। आहाहा! अर्थात् कि आत्म-आराधना की होगी। आहाहा! इतना पढ़ा होगा या इतना जाना होगा, यह प्रश्न अब यहाँ नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वलक्ष्य से वैराग्य पालन किया होवे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : परलक्ष्यी ज्ञान, वह भी परज्ञेय में निमग्न है। यह आ गया है पहले। आहाहा! है न? आ गया है न? कितने में आ गया? इसमें आ गया है कहीं। कितने में? ३८१।

तो वह ज्ञेय निमग्न रहता है,... आहाहा! शास्त्र का ज्ञान किया होगा, वह भी परलक्ष्यी है। आहाहा! वह परज्ञेय है। आहाहा! इससे वह ज्ञेय निमग्न है। ज्ञेय निमग्न अर्थात्? परज्ञेय निमग्न। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान-जानपना किया होगा, वह भी परज्ञेय निमग्न है। जैसे राग में ऐसे पर है, वैसे यह ज्ञेयपना, जानपना पर है, वह शब्द ज्ञान है। बन्ध अधिकार में आता है न? वह आत्मज्ञान नहीं। आहाहा! शब्दज्ञान में भी यदि निमग्न रहेगा तो (देह) छूटने पर तुझे दुःख होगा। आहाहा! ज्ञेय निमग्न, ऐसा है। अकेला मग्न, ऐसा नहीं कहा। ज्ञेय अर्थात् परज्ञेय निमग्न, ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा! स्वज्ञेय ज्ञायक और आनन्दस्वरूप प्रभु में यदि निमग्न (होकर) आराधना नहीं की होगी... आहाहा! तो

फिर वहाँ शान्ति कहाँ से आयेगी ? झपट्टे मारेगा ऐसा करो... ऐसा करो... ऐसा करो... आहाहा !

आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी,... उसका स्पष्टीकरण किया। **स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा...** आहाहा ! उसकी प्रतीति और अनुभूति, उसकी अनुभूति की होगी... आहाहा ! तो उस आत्मा की आराधना की होगी, तो **आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी,...** आहाहा ! शान्ति कहीं बाहर से नहीं मिलती, शुभराग से कहीं शान्ति नहीं मिलती। आहाहा ! शास्त्र के ज्ञान से भी कहीं शान्ति नहीं मिलती। पठन ग्यारह अंग का अनन्त बार किया, वह कहीं शान्ति का कारण नहीं है। आहाहा ! वह तो पर शब्दज्ञान में निमग्न है। उससे भिन्न आत्मा की शान्ति प्रगट की होगी... आहाहा ! अर्थात् भगवान आत्मा शान्ति का सागर प्रभु है। अर्थात् ? अकषायस्वभाव का समुद्र है। अर्थात् ? चारित्रस्वरूप है। जैसे दर्शनस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, वैसे वह चारित्रस्वरूप है। चारित्रस्वरूप है अर्थात् कि वीतरागस्वरूप है। वीतरागस्वरूप है अर्थात् कि अकषाय शान्तस्वरूप है। आहाहा ! उस ओर का झुकाव करके शान्ति प्रगट की होगी। शक्तिरूप शान्ति है। प्रगट की होगी – ऐसा है न ? यह शान्तिस्वरूप ही है।

घट-घट अन्तर जिन बसे, घट-घट अन्तर जैन
मत मदिरा के पान सौं, मतवाला समझे न॥

यह प्रभु जिनस्वरूप ही है अर्थात् शान्तस्वरूप ही है अर्थात् अकषायस्वभाव ही है। उसके सन्मुख होकर शान्ति प्रगट की होगी। शक्तिरूप से तो शान्ति का सागर ही है। शान्ति प्रगट की होगी। आहाहा ! शान्तस्वरूप प्रभु है, उसके सन्मुख होकर शान्ति... शान्ति... शान्ति... प्रगट की होगी। **तो वह एक ही तुझे शरण देगी।** वे सब सगे-सम्बन्धी, वैद्य-डॉक्टर-वॉक्टर कुछ तूफान सब... आहाहा ! यहाँ से शुरु किया है। **मरण तो आना ही है...** देह तो छूटना ही है। यह कहीं इसका दूसरा समय हो ऐसा है और दूसरा भव हो, ऐसा है ? यह तो इस भव में ही देह छूटनेवाला है। आहाहा !

आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही... तो वह एक ही तुझे शरण देगी। अरिहन्ता शरणं, सिद्धा शरणं, यह नहीं। आहाहा ! केवलिपण्णत्तो धम्मो शरणं, यह

पर्याय शरण कही, परन्तु यह पर्याय शरण कब होगी ? आत्मा के ओर की शान्तिस्वरूप है, प्रभु ! शान्तिसागर, शान्तिसागर, शान्ति का पर्वत है वह, शान्ति का पर्वत है, प्रभु ! शान्ति का पर्वत है। उस ओर की एकाग्रता से वर्तमान में प्रगट शान्ति की होगी, तो वह एक ही शरण है। उस समय कोई अरिहन्त शरण और सिद्ध शरण और साधु शरण, णमो अरिहंताणं करने जाए, तब तो विकल्प है। आहाहा ! मांगलिक सुनाओ, मांगलिक सुनाओ। सुनने में तो राग है। आहाहा ! यह सुनना भी छोड़ दे। आहाहा ! अन्तर और अन्तर के नाद को देख, शान्ति का सागर, शान्ति के नाद से भरपूर है, उस ओर की शान्ति प्रगट की होगी। आहाहा ! **तो वह एक ही तुझे...** उसमें अरिहन्त भी साथ में शरण देंगे, यह दो नहीं है। आहाहा ! वह फौजदार थे न ? भाई ! राजकोट।

मुमुक्षु : वे मूल जैतपुर के थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैतपुर के, राजकोट में फौजदार थे। (संवत्) १९९० के वर्ष की बात है। गौशाला में रहते थे। क्या नाम ? भूल गये। जयचन्द (जयचन्दभाई) व्यक्ति मस्तिष्कवाला (होशियार) था परन्तु कुछ किया नहीं। अन्त में शरीर का खून सूख गया। क्या कहलाता है वह ? खून कम हो जाता है न ? देह छूटने की स्थिति थी। महाराज को बुलाओ। गये, मांगलिक सुनाया। कहा, यह क्या कहा सुना ? मांगलिक का अर्थ क्या है ? अरिहन्ता शरणं, सिद्धा शरणं, वे कोई शरण दे, ऐसा नहीं है, कहा। तब क्या है ? तुमने क्या कहा ? प्रभु ! १९९० के वर्ष की बात है। सदर में चातुर्मास था न। गौशाला में बैठे थे। फिर रात्रि में तुरन्त गुजर गये। बैठे थे। वह क्या कहलाता है, खून वह हो जाता है ? ऐनीमा कहे। शरीर फीका हो गया, महिलाएँ बैठी थी न सब... पूछा कि महाराज ! यह आपने कहा, उसका क्या स्वरूप, क्या कहा ? यह शरण की बात... १९९० की बात है। कहा, भाई ! शरण का अर्थ यह है कि आत्मा ही आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। उसमें जाना और शरण होना, वही मांगलिक, शरण और वह उत्तम है। आहाहा ! सुनता था, प्रेम से सुनता था। रात्रि में देह छूट गयी। आहाहा ! ऐसा माने कि हमने यह मांगलिक सुना था न, इससे-मांगलिक से शान्ति आयेगी। बापू ! सुनना तो विकल्प है। आहाहा ! मरण समय मुझे सुनाओ, फिर यह भी नहीं रहे, कहते हैं, शान्ति निकालेगा तो। यह नहीं रहे अर्थात् इसकी तुझे जरूरत

नहीं पड़ेगी। आहाहा! और सुनाना चाहेगा तो तुझे अन्तर में एकाग्रता नहीं है, इसका अर्थ (यह है)। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

तो वह एक ही तुझे शरण देगी। एकान्त? एक ही, तो एकान्त हो जाता है। कथंचित् भगवान का स्मरण आदि भी शरण देगा। (ऐसा) अनेकान्त नहीं होगा? यह अनेकान्त है। यह देगा और वे नहीं देंगे, ऐसा। आहाहा! भगवान अन्दर अतीन्द्रिय शान्ति का पिण्ड है न, प्रभु! आहाहा! वह अतीन्द्रिय शान्ति का पिण्ड है, वहाँ देख और उसमें एकाग्रता की होगी... शुभभाव किया होगा तो नहीं, यहाँ तो कहते हैं। वह तो राग है। आहाहा! और वह तो राग गया होगा। उसके तो परमाणु बँधे होंगे, उसमें तुझे शरण क्या आया? शुभभाव होकर तीर्थंकर गोत्र बँधा होगा तो भी वह कहीं शरण नहीं है। जिस भूमिका में बँधा है, वह भूमिका सम्यग्दृष्टि को है। आहाहा! यह दृष्टि का विषय चैतन्य प्रभु है, उसमें एकाग्र होकर शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. आहाहा! प्रगट की होगी; शक्तिरूप से तो है, स्वभावरूप से तो है, भावरूप तो है। आहाहा! उसे अन्तर में, पर्याय में शान्ति प्रगट की होगी **तो वह एक ही तुझे शरण देगी।**

इसलिए अभी से वह प्रयत्न कर। आहाहा! वर्तमान से ही शुरुआत कर। बाद में करूँगा... बाद में करूँगा... बाद में करूँगा... बाद में पहले नहीं आयेगा, बाद में बाद ही रह जाएगा। आहाहा! प्रवचनसार में आता है न? अन्तिम श्लोक अन्तिम। आज ही कर। प्रवचनसार में है। आज। तूने सुना, भगवान आत्मा राग से भिन्न प्रभु है तो आज ही उसकी अनुभूति की शुरुआत कर। आहाहा! और पाँचवीं गाथा (समयसार) में ऐसा कहा न? '**तं एयत्तविहत्तं दोएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज**' यदि मैं कहूँ तो प्रमाण करना। आहाहा! सुनकर हाँ ही करना, ऐसा नहीं। आहाहा! भाषा तो देखो! दिगम्बर सन्तों की भाषा। आहाहा! प्रमाण करना—अनुभूति करके प्रमाण करना। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द का सागर है, प्रभु! आज ही, अभी से ही। आहाहा! अभी से ही वह प्रयत्न कर। आहाहा!

मुमुक्षु : मौत आवे तब नहीं, अभी से।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी से ही। मौत आवे, तब क्या करे? घर सुलगे, तब कुँआ खोदे, पानी कब निकलेगा? आहाहा! घर सुलगे, तब कुँआ खोदे, तब पानी कब निकलेगा?

वहाँ तो जलकर राख हो जाएगा। आहाहा! घर सुलगने से बचाना हो तो पहले से कुँआ खोदकर पानी निकाल ले। आहाहा! यह ऐसी बात है।

इसलिए अभी से वह प्रयत्न कर। सुना, तब से ही प्रयत्न कर, कहते हैं। आहाहा! प्रमाण करना, कहा न? ओहो! दिगम्बर सन्तों की वाणी और वह पंचम काल के श्रोता को -अप्रतिबुद्ध को कहते हैं। आहाहा! अत्यन्त अप्रतिबुद्ध है, उसे कहते हैं कि आज से शुरुआत कर, भाई! आहाहा! वह श्रोता पंचम काल का श्रोता है। आहाहा! (समयसार गाथा) ३८ में ऐसा कहा, जीव (अधिकार) ३८ गाथा में पूर्ण किया न! पंचम काल का श्रोता, जिसे यह सुनकर जिसके अन्दर दर्शन, ज्ञान और चारित्र से परिणमित हुआ है, वह श्रोता ऐसा कहता है कि मैं जो यह दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हुआ हूँ, आगम कौशल्य से स्वभाव की शरण में जाकर (परिणमा), यह अब मैं गिरनेवाला नहीं हूँ। यह तो देखो! अप्रतिबुद्ध को कहा, गुरु ने बारम्बार समझाया अर्थात् कि उसने बारम्बार मन्थन किया और गुरु ने बारम्बार समझाया, दोनों बात है। एक बार समझाकर पंचम काल के प्राणी हैं, उसे बारम्बार (कहा कि) भगवान राग से भिन्न है, प्रभु! आहाहा! अब मुझे उसमें से गिरना नहीं होगा। अप्रतिहतभाव बताया है। आहाहा!

मुमुक्षु : मैंने मोह का क्षय किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो जोड़नी क्षायिक है। आहाहा! भले क्षयोपशम है, परन्तु वह अप्रतिहत है। आहाहा! पंचम काल का अप्रतिबुद्ध जीव जब प्रतिबोध पाता है। आहाहा! कहते हैं कि हमें अब फिर से मिथ्यात्व के अंकुर उत्पन्न होनेवाले नहीं हैं। तू किसके पास जाकर बोलता है ऐसा? भगवान ने कहा है तुझे? भगवान के पास गया था? कुन्दकुन्दाचार्य तो गये थे। भगवान के पास गया था, मेरा नाथ है, वहाँ (गया था)। आहाहा! वहाँ से आया हुआ हूँ, वह मैं कहता हूँ कि मेरी परिणति जो प्रगट हुई है, (वह अब) 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में' सादि अनन्त काल में शामिल हो जाएगी यह बात। आहाहा! क्या शैली है? आहाहा! शिथिल, पतली बातें हैं, वे यहाँ नहीं हैं। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ जहाँ झिंझोड़कर जगाया है न! आहाहा! जागता जीव ध्रुव है न, ऐसा आया है न बहिन में? ज्ञायकभाव ध्रुव है न! ध्रुव का ध्येय कर तो तुझे ध्रुव प्राप्त होगा।

वह टिकता तत्त्व है। बदलता, पलटता वह पर्याय है; वस्तु टिकता तत्त्व है। टिकते तत्त्व में दृष्टि दे तो दृष्टि टिकती-स्थिर हो जाएगी। आहाहा! इससे तुझे शरण देगा, एक ही तुझे शरण देगा। अभी से ही वह प्रयत्न कर। आहाहा! बहुत मीठी / मधुर बात है, बापू! आहाहा! आनन्द के सागर को-भरे हुए को उछाल मार, कहते हैं! पर्याय में बाढ़ ला।

'सिर पर मौत मंडरा रहा है'... अर्थात्? यह काल। देह छूटेगी.. छूटेगी... छूटेगी... ऐसा समय तो आयेगा। आहाहा! तत्पश्चात् यह सब छूट जाएगा। इस मकान में हूँ और इसमें यह हूँ और इस शरीर में हूँ, इस वस्त्र में हूँ- ऐसे मनुष्यों के संयोग के सम्बन्ध में हूँ और इस क्षेत्र में हूँ, यह सब छूट जाएगा। आहाहा! देह की स्थिति पूरी होनेवाली है। (सिर पर) मौत मँडरा रही है। आहाहा! **ऐसा बारम्बार स्मरण में लाकर...** बारम्बार ऐसा याद करके, **भी तू पुरुषार्थ चला...** आहाहा! देह की स्थिति पूरी होने के नगाड़े बजते हैं। वह पूछकर नहीं आयेगी यहाँ कि अब मैं देह छूटनेवाली हूँ। आती हूँ, हों! छूटा हुआ तो है एक क्षेत्रावगाह में, परन्तु इस क्षेत्र से ऐसे आकाश का क्षेत्र इकट्ठा है, उस क्षेत्र से पृथक् पड़ जाएगा। आकाश के क्षेत्र में अर्थात् आकाश है, उसका यह स्व और पर ऐसे दोनों एक क्षेत्रावगाह में है। स्व का क्षेत्र और पर का क्षेत्र एक नहीं है परन्तु आकाश के क्षेत्र में ऐसे एक में है। इस आकाश के क्षेत्र में भी नहीं परन्तु आकाश के क्षेत्र में छह द्रव्य और कर्म तथा शरीरादि ऐसे स्वक्षेत्र में ऐसे हैं। आकाश के स्वक्षेत्र में अर्थात् उस आकाश में एक भाग पर, तथापि आकाश के क्षेत्र में वह नहीं है। आहाहा! तथा वह परक्षेत्र में भी नहीं है। आहाहा!

इस प्रकार बारम्बार विचार करके, **स्मरण में लाकर भी तू पुरुषार्थ चला कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे'...** आया। लो! 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' आहाहा! अमर भये, भगवान तो अमर है। शुद्ध चैतन्य प्रगट हुआ, उसे मरण कैसा? देह की स्थिति पूरी हो, उसे मरण कहो, परन्तु प्रभु की स्थिति पूरी नहीं होती, वह तो अमर है। आहाहा! ऐसी बात है। 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' आहाहा! आनन्दघनजी का शब्द है।

ऐसे भाव में तू... ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। भले उस समय कदाचित् निर्विकल्पता न हो, विकल्प हो परन्तु समाधि-एकाग्रता है तो समाधिपूर्वक

देह छूटेगी। क्या कहा, समझ में आया? निर्विकल्प ही होगा, विकल्प का अंश ही नहीं रहेगा, (ऐसा नहीं है) वस्तु की तो निर्विकल्प दृष्टि हुई है, परन्तु देह छूटने के अवसर में अत्यन्त निर्विकल्प होकर देह छूटेगी, ऐसा कुछ नहीं है। विकल्प हो, परन्तु अन्तर समाधि एकाग्रता है, उस समाधिपूर्वक देह छूटेगी। ख्याल में आ जाएगा कि यह देह छूटने का प्रसंग है। ऐसा विकल्प हो, तथापि अन्दर समाधि है। आहाहा! और किसी को तो यह विकल्प भी नहीं रहता। समझ में आया?

मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है कि उपसर्ग पड़ता है तो इसका ज्ञानी को ख्याल ही नहीं होता, ऐसा नहीं है। किसी को ख्याल-विकल्प भी रहता है कि यह उपसर्ग है। आता है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। बहुत-बहुत भरा हुआ है सब। मोक्षमार्गप्रकाशक में। आहाहा! उपसर्ग का प्रतिकूल कोई सिंह, बाघ काटता है, सर्प काटा है, इत्यादि, उस समय सबकी निर्विकल्प ही दशा होती है, (ऐसा नहीं है) अर्थात् दृष्टि को शुद्धता प्रगट हुई है, उतनी तो निर्विकल्पता है, परन्तु अत्यन्त निर्विकल्प का शुद्ध उपयोग ही एक ही हो, ऐसा कुछ नहीं है। यह ख्याल भी रहता है कि यह है, ऐसा विकल्प वह ख्याल रहता है परन्तु अन्तर में दृष्टि में तो विकल्प से भिन्न है, उसमें रमता है। समझ में आया? अरे.. अरे...! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं।

श्रीमद् ने कहा है न अन्तिम? यथार्थ है। विकल्प आया (कहा) मनसुख! माँ को पीड़ा मत होने देना। छोटी उम्र थी, तैंतीस वर्ष (की उम्र थी)। मैं स्वरूप में लीन होता हूँ। स्वरूप की दृष्टि और अनुभव तो है, परन्तु यह इतना विकल्प आया है। आहाहा! मेरे स्वरूप में मैं लीन होता हूँ। जरा आवाज भी आयी मैं... मैं... मैं... साथ में बैठे थे उनके बहनोई। क्या (नाम) कहा? राजकोटवाले जवेरचन्दभाई। इन लोगों को विश्वास उठ गया। क्योंकि जरा आवाज चली न। ऐसा? मुझसे बात करते थे। कहा, वह तो देह की क्रिया है बापू! वह तो होती है क्योंकि कितनी ऐसी शक्ति थी, बैठे थे और खड़े हुए, इतनी शक्ति थी। अब उस शक्ति को अन्तर में तो लीनता हो गयी है परन्तु वह छूटने की जरा आवाज चली है ऐसे दो, चार घर सुनें वहाँ तक चली थी। इससे क्या कहा? आहाहा!

मुमुक्षु : कोई बेसुध हो, बकवाट हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बकवाट-बकवाट नहीं।

मुमुक्षु : दृष्टि की समाधि हो सकती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : समाधि है अन्दर। अपवाद कोई सहज इन्द्रियज्ञान में अन्तर हो, उन्मादपना सहज हो, तथापि अन्दर समाधि होती है। इन्द्रिय की ओर के ज्ञान में जरा... आता है न ? समाधिशतक में आता है। आता है, यह तो सब ख्याल है। आहाहा! जरा उन्माद जैसा दिखायी दे। श्रीमद् यही कहते हैं, मरते हुए जरा ज्ञानी को उन्माद जैसा भी दिखायी दे। इन्द्रियज्ञान में अन्तर पड़ने से होता है, तथापि अन्दर समाधि है। आहाहा! ऐसी स्थिति है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। आहाहा! **जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।** सारांश लिया है। आहाहा! निमित्त नहीं, राग नहीं, पर्याय भी नहीं। आहाहा! परन्तु वस्तु, ऐसा कहा न ? आहाहा! शुद्ध आत्मद्रव्य। **जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही...** एकान्त किया। आहाहा! दुनिया माने, न माने; मान दे, न दे, इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। बाहर में प्रसिद्धि ऐसी हो या ऐसी न हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध है। आहाहा!

अन्दर में आत्मा का शुद्ध उपादान एक ही आराधना (करनेयोग्य) और उपादेय है। उसमें राग उपादेय नहीं है, पर्याय उपादेय नहीं है। उपादेय करनेवाली पर्याय है, परन्तु उपादेय है, यह शुद्ध आत्मा। समझ में आया ? आहाहा! ऐसी बातें हैं। **जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।** आदरणीय, स्वीकार करनेयोग्य, सत्कार करनेयोग्य एक ही चीज़ है। तब इसका जीवन सफल होता है। आहाहा! इसने जीना जाना है। आता है न ? (जीना जाना) नेमनाथ ने जीवन, भजन में आता है। 'जीवि जाण्यो नेमनाथे जीवन' आहाहा!

मुमुक्षु : आनन्दघनजी में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अपने स्तवन में आता है। अपने स्तवन मंजरी कहलाती है न, उसमें आता है।

मुमुक्षु : साहेब! व्यवहार में तो कहलाता है, जी कर जाना और मरकर जाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मर जाने का अर्थ उस राग को मार डाला, वह मर जाना।

राग को मार डाला और जीव को, जीव को ज्योति को जागृत किया। उसने मरकर भी जाना, ऐसा भी कहा जाता है। आहाहा! बातें बापू बहुत... ओहोहो! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वर का पन्थ कोई अलौकिक है। यह पन्थ आत्मा में है। आहाहा! यह पन्थ कहीं बाहर में नहीं होता। आहाहा!

अब यह स्थिति प्राप्त होने पर भविष्य में वह सर्वज्ञ हो सकेगा। आहाहा! ऐसी समाधिस्थिति में देह छूटने से भले उस भव में कदाचित् सर्वज्ञपना न आवे तो भविष्य में एक-दो भव में भी सर्वज्ञ तो होगा ही। आहाहा!

सर्वज्ञभगवान परिपूर्ण ज्ञानरूप से परिणमित हो गये हैं। वे अपने को पूर्णरूप से—अपने सर्वगुणों के भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेदों सहित—प्रत्यक्ष जानते हैं। साथ ही साथ वे स्वक्षेत्र में रहकर, पर के समीप गये बिना, परसन्मुख हुए बिना, निराले रहकर लोकालोक के सर्व पदार्थों को अतीन्द्रियरूप से प्रत्यक्ष जानते हैं। पर को जानने के लिये वे परसन्मुख नहीं होते। परसन्मुख होने से ज्ञान दब जाता है—रुक जाता है, विकसित नहीं होता। जो ज्ञान पूर्णरूप से परिणमित हो गया है, वह किसी को जाने बिना नहीं रहता। वह ज्ञान स्वचैतन्यक्षेत्र में रहते हुए, तीनों काल के तथा लोकालोक के सर्व स्व-पर ज्ञेयों मानों वे ज्ञान में उत्कीर्ण हो गये हों, उस प्रकार समस्त स्व-पर को एक समय में सहजरूप से प्रत्यक्ष जानता है; जो बीत गया है, उस सबको भी पूरा जानता है; जो आगे होना है, उस सबको भी पूरा जानता है। ज्ञानशक्ति अद्भुत है॥४१३॥

यह सर्वज्ञभगवान, आहाहा! **सर्वज्ञभगवान परिपूर्ण ज्ञानरूप से परिणमित हो गये हैं।** आहाहा! सर्वज्ञभगवान परमेश्वर परमात्मा आत्मा होगा, तब तो वह सर्वज्ञभगवान परिपूर्ण ज्ञानरूप परिणमित हो गये हैं। आहाहा! परिपूर्ण ज्ञानरूप परिणमित हो गये हैं, पर्याय में। उस परिपूर्ण ज्ञान की परिणति भी पूर्व का मोक्षमार्ग है, उससे परिणति हुई, वह तो व्यवहार है परन्तु वह सर्वज्ञस्वभावी भगवान में अन्दर एकाग्र हुआ है, तो द्रव्य में से

सर्वज्ञ पर्याय आती है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। बाकी तो सर्वज्ञ पर्याय स्वयं षट्कारकरूप से परिणमित होकर प्रगट होती है। स्वयंभू, आहाहा! मोक्षमार्ग है, इसलिए मोक्ष हुआ, यह व्यवहार है। द्रव्य में से द्रव्य की शक्ति थी, वह प्रगट हुई, यह भी अपेक्षित है। बाकी उस समय में केवलज्ञान, सर्वज्ञज्ञान, सर्वदर्शी, अनन्त आनन्द, परिपूर्ण पुरुषार्थ आदि पर्याय का षट्कारकरूप से परिणमन होता हुआ, प्रगट होता है। आहाहा!

सर्वज्ञभगवान परिपूर्ण ज्ञानरूप से परिणमित हो गये हैं। वे अपने को पूर्णरूप से—अपने सर्वगुणों के भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेदों सहित— अपने को पूर्णपने की व्याख्या की है। **अपने सर्वगुणों के भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेदों सहित—प्रत्यक्ष जानते हैं।** आहाहा! भविष्य की पर्याय जो अभी—अभी नहीं है, उसे भी प्रत्यक्ष जानते हैं। भूत-वर्तमान और भावी पर्यायें। जो पर्याय वर्तमान में नहीं है, अभी भविष्य में होगी, उसे भी वर्तमानवत् प्रत्यक्ष देखते हैं, जानते हैं। उत्पाद-व्यय की पर्याय वर्तमान की, भूत की और भविष्य की। आहाहा! कोई अचिन्त्य बात है, बापू! और वह पर्याय इतनी प्रगट हुई, तथापि द्रव्य और गुण तो पूरे के पूरे हैं, उतने के उतने ही रहे हैं। आहाहा!

कोई तत्त्व की अचिन्त्यता और अद्भुतता अलौकिक है! वस्तु परिपूर्ण गुण से भरपूर है। उसकी पर्याय में परिपूर्णरूप से परिणम जाती है, तथापि वह परिणमित हुई पर्याय पूर्ण होने पर भी वस्तु तो परिपूर्णरूप से है, वह उतनी की उतनी ही है। आहाहा! परिपूर्णरूप से हुई पर्याय, पूरी हुई, इसलिए उसमें से आयी, इसलिए वहाँ कहीं कम हो गया (—ऐसा नहीं है)। आगे आता है न कहीं? मुनिराज का नहीं आता? तुरन्त ही आता है। ४१५, ४१५ आता है। **अनन्त अमृतरस से भरपूर, अक्षय घट है।** है? **उस घट में से पतली धार से अल्प अमृत पिया जाये।** मुनि को तो...

मुमुक्षु : परन्तु मुनि को सन्तोष नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए न! सन्तोष है परन्तु पूरा चाहिए। आहाहा! **हमारा आत्मा तो अनन्त गुणों से भरपूर, अनन्त अमृतरस से भरपूर, अक्षय घट है।** अक्षय घट है। आहाहा! यह घट नहीं, यह घट-घड़ा। आहाहा! **उस घट में से पतली धार से अल्प**

अमृत पिया जाये, ऐसे स्वसंवेदन से हमें सन्तोष नहीं होता। इतने से हम अटकते नहीं है, कहते हैं। **हमें तो प्रतिसमय पूर्ण अमृत का पान हो, ऐसी पूर्ण दशा चाहिए।** आहाहा! तथापि वह पूर्ण अमृत की धारा आने पर भी घट तो परिपूर्ण ही रहता है। यह इसमें है, देखो! घड़ा भी सदा परिपूर्ण भरा हुआ रहता है। आहाहा! अब यह इसे तर्क से कैसे (जँचे)? वस्तु का स्वभाव ही कोई द्रव्य और गुण ऐसा ही है कि उसमें से परिपूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी वस्तु तो परिपूर्ण जितनी की जितनी है, उतनी रहती है। आहाहा! ऐसा कोई चैतन्य का अद्भुत स्वरूप है! आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। आहाहा!

अविभाग प्रतिच्छेदों सहित-प्रत्यक्ष जानते हैं। साथ ही साथ वे स्वक्षेत्र में रहकर, पर के समीप गये बिना, स्वक्षेत्र में रहकर, पर के समीप गये बिना, परसन्मुख हुए बिना, परसन्मुख हुए बिना, निराले रहकर लोकालोक के सर्व पदार्थों को अतीन्द्रियरूप से प्रत्यक्ष जानते हैं। आहाहा! विशेष कहा जाएगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)